ज्ञानार्णव में ध्यान का स्वरूप

☐ डॉ० प्रेमसुमन जैन

जैनसाहित्य में ध्यान के विभिन्न पक्षों का वर्णन प्रायः सम्यक्चारित्र के वर्णन के प्रसंग में आता है। जैनदर्शन में संक्षेपरूप में संसार-बन्धन का कारण आस्रव और बन्ध को माना गया है तथा संसार से मुक्ति के लिए संवर और निर्जरा को प्रमुखता दी गयी है। कर्मों की निर्जरा में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एवं सम्यक्चारित्र को आधार माना गया है। सम्यक्-चारित्र में तप की प्रधानता है। तप के आभ्यन्तर छह भेदों में एक भेद ध्यानतप भी है। इसी ध्यान का वर्णन जैनाचार्यों ने अपने ग्रन्थों में किया है।[1] ध्यान पर स्वतन्त्ररूप से भी ग्रन्थ लिखे गये हैं।[2] वस्तुतः जैनदर्शन में ध्यान आत्मा के ज्ञान गुण को प्रकट करने वाला है। अतः ध्यान और ज्ञान में अटूट सम्बन्ध है। मध्ययुग के ११ वीं शताब्दी के जैनाचार्य शुभचन्द्र ने अपने ध्यानशास्त्र को ज्ञानशास्त्र का ग्रन्थ मानकर इसे 'ज्ञानार्णव' नाम प्रदान किया है। विषय की दृष्टि से वास्तव में यह ग्रन्थ ध्यान का समुद्र है। ध्यान के सभी पक्षों का इसमें विस्तार से वर्णन है। इसलिए आचार्य ने इसे 'ध्यानशास्त्र' भी कहा है—

इति जिनपतिसूत्रात्सारमुद्धृत्य किंचित्।
स्वमतिविभवयोग्यं ध्यानशास्त्रं प्रणीतम्॥

आचार्य शुभचन्द्र ने अपने इस ग्रन्थ को 'योगप्रदीप' भी कहा है। उनकी दृष्टि से ध्यान एवं योग शब्द समान अर्थ को व्यक्त करते हैं। यद्यपि जैनपरम्परा में इन दोनों शब्दों का अपना अलग इतिहास भी है।

आचार्य शुभचन्द्र एवं उनके ज्ञानार्णव के सम्बन्ध में इस ग्रन्थ के सम्पादक पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री एवं अनुवादक पं. बालचन्द्र शास्त्री ने अपनी प्रस्तावनाओं में पर्याप्त प्रकाश डाला है।[3] जैन योगशास्त्र की परम्परा में ज्ञानार्णव का विशेष स्थान है। ज्ञानार्णव में पूर्ववर्ती ध्यानविषयक सामग्री का सार प्रस्तुत किया गया है। इस कारण यह ग्रन्थ परवर्ती जैनाचार्यों के लिए आधार-ग्रन्थ बन गया है। आचार्य हेमचन्द्र के योगशास्त्र के साथ इसका घनिष्ट सम्बन्ध है।[4]

आचार्य शुभचन्द्र का समय विद्वानों ने वि० सं० १०१६ से वि० सं० ११४५ के बीच माना है। ज्ञानार्णव में शुभचन्द्र ने जिनसेन के आदिपुराण, रामसेनाचार्य के तत्त्वानुशासन, सोमदेव के उपासकाध्ययन एवं अमितगति के योगसारप्राभृत आदि पूर्ववर्ती ग्रन्थों के आधार

---

१. जैन, प्रेमसुमन; 'ध्यान सम्बन्धी जैन-जैनेतर साहित्य' —जिनवाणी विशेषांक
२. कापड़िया, र० ला०; जैनसाहित्य का बृहत्-इतिहास, भाग ४, पृ० २२७-२५५
३. ज्ञानार्णव, सं० डा० ए० एन० उपाध्ये, सोलापुर, १९७६ की प्रस्तावना
४. वही, प्रस्तावना, पृ० ४७-५१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पर ध्यान के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डाला है। किन्तु उसके पूर्व बारह भावनाओं का वर्णन ग्रन्थ में किया है। शुभचन्द्र प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर देते हैं कि यह मेरी रचना संसार-ताप के निवारण के लिए है। इससे अविद्या से उत्पन्न दुराग्रह नष्ट होगा। तभी समीचीन ध्यान की प्राप्ति होगी। वही वास्तविक आनन्द प्रदान करना इस ग्रन्थ का प्रतिपाद्य है—

अविद्याप्रसरोद्भूतग्रह-निग्रहकोविदम्।
ज्ञानार्णवमिमं वक्ष्ये सतामानन्दमन्दिरम्॥ १।११

आचार्य शुभचन्द्र अध्यात्मयोगी थे। अतः ध्यान का वर्णन करते समय सांसारिक सुखों को उन्होंने महत्त्व नहीं दिया। ध्यान कोई चमत्कार दिखाने के लिए अथवा इन्द्रियों के रसों की तृप्ति के लिए नहीं है। इस प्रकार की साधना संसार के कीचड़ में ही फंसाती है। राग-द्वेष से युक्त वृत्तियों की उपस्थिति में शुद्ध ध्यान नहीं हो सकता है। अतः बारह भावनाओं के द्वारा पहले अपने चित्त को निर्मल करना चाहिए। मिथ्या धारणाओं के छूटने पर ही ध्यान की भूमि में प्रवेश किया जा सकता है। अतः सम्यग्दृष्टि होना ध्यान की प्रथम सीढ़ी है। यदि कोई साधक संसार के क्लेशों को नष्ट करना चाहता है तो उसे सम्यग्ज्ञान रूपी अमृत रस का पान करना चाहिए। सम्यग्ज्ञान का बीज ध्यान है। संसाररूपी समुद्र को लांघने के लिए ध्यान एक जहाज की तरह है—

भवक्लेशविनाशाय पिब ज्ञानसुधारसम्।
कुरु जन्माब्धिमत्येतुं ध्यानपोतावलम्बनम्॥ ३।१२

ध्यान की साधना के लिए संसार के स्वरूप को समझना आवश्यक है। जब तक संसार के कार्यों में सुख और ममत्व बुद्धि बनी रहेगी तब तक ध्यान का महत्त्व समझ में नहीं आ सकेगा। अतः अन्तःकरण में विवेक को जागृत करना होगा। आचार्य शुभचन्द्र कहते हैं कि तीनों लोकों में व्याप्त करने वाली मोहरूपी गाढ़ निद्रा को जो नष्ट करता है, वही ध्यानरूपी अमृत रस का पान कर सकता है। बाह्य पर पदार्थों से ममत्व बुद्धि को हटाकर ही ध्यान का आनन्द लिया जा सकता है। योगिजनों ने इस ध्यान के सिद्धान्त को स्वयं आचरित किया है। अतः उनसे ध्यान के स्वरूप को यदि सुना जाय तो चित्त निर्मल होता है। ऐसे गुणकारी ध्यान को जब आचरण में लाया जाता है तो संसार के सभी दुःखों से छुटकारा मिल जाता है—

पुनात्याकर्णितं चेतो दत्ते शिवमनुष्ठितम्।
ध्यानतन्त्रमिदं धीर धन्ययोगीन्द्रगोचरम्॥ ३।२५

योगशास्त्र में ध्यान के स्वरूप आदि पर चिंतन करते हुए उससे सम्बन्धित अन्य बातों पर भी विचार किया जाता है। शुभचन्द्र ने ध्याता, ध्यान, ध्येय और ध्यान का फल, इन चारों पर विस्तार से चिंतन किया है। शुभचन्द्र लौकिक फल के लिए ध्यान का उपयोग करना ठीक नहीं समझते। अतः वे आध्यात्मिक जागृति के लिए ही शुभध्यान का महत्त्व प्रतिपादित करते हैं। वैसे ही आत्महितैषी ध्याता को वे प्रमुखता देते हैं, लौकिक योगी को नहीं। वे मानते हैं कि जो योगी व साधु ध्यान को जीविका का साधन बनाते हैं, उन्हें लज्जा आनी चाहिए। उनका ऐसा ध्यान कभी सार्थक नहीं हो सकता। यह ध्यान का दुरुपयोग है। ध्यान को, साधुवेष को आजीविका का साधन बनाना माता को वेश्या बनाने जैसा है। यथा—

आत्मस्थ तन
आत्मस्थ मन
तब हो सके
आश्वस्त जन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यतित्वं जीवनोपायं कुर्वन्तः किं न लज्जिताः ।
मातुः पणमिवालम्ब्य यथा केचित्गतघृणाः ।। ४।५४

ज्ञानार्णव के अनुसार सच्चा ध्याता वही हो सकता है, जिसने वास्तविक संयम को प्राप्त किया है। निर्मल ज्ञान की साधना से जिनका अन्तःकरण पवित्र है, जगत् के सभी जीवों के प्रति जिनके मन में दया एवं संरक्षण का भाव है, जो वायु की तरह परिग्रह के मोह से रहित हैं, वे ही योगी सच्चे ध्याता हैं, ध्यान के अधिकारी हैं।[1] जिस योगी के ध्यानस्थ होने पर प्राणवायु का संचार रुक जाता है, शरीर नियमित हो जाता है, इन्द्रियों की प्रवृत्ति रुक जाती है, नेत्रों का स्पन्दन नष्ट हो जाता है, अन्तःकरण विकल्पों से रहित हो जाता है, मोहरूपी अन्धकार नष्ट हो जाता है तथा विश्व को प्रकाशित करने वाला तेज प्रकट हो जाता है, वह योगी धन्य है। वही ध्यान के श्रेष्ठ आनन्द को अनुभव कर सकता है।[2]

आचार्य शुभचन्द्र भारतीय योगदर्शन से अच्छी तरह परिचित थे। उन्होंने अपने ग्रन्थ में जैन, अजैन सभी योग-परम्पराओं का प्रकारान्तर से उल्लेख किया है। प्रशस्त ध्यान के लिए मन पर संयम आवश्यक है। विभिन्न दार्शनिक मन के संयम के लिए अलग-अलग साधनों का उल्लेख करते हैं। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि, योग के इन आठ अंगों का वर्णन भारतीय परम्परा में विस्तार से हुआ है। इनका लक्ष्य मन पर संयम पाकर योग की साधना करना है। शुभचन्द्र कहते हैं कि कुछ दार्शनिक उत्साह, निश्चय, धैर्य, सन्तोष, तत्त्वनिश्चय और देशत्याग, इन छह अंगों से भी योग-साधना की सिद्धि मानते हैं।[3] कुछ योगी ध्यान की साधना में कारण-चतुष्टय—गुरु का उपदेश, उपदेश पर भक्ति, सतत चिंतन और मन की स्थिरता—को भी अनिवार्य मानते हैं।[4] आचार्य शुभचन्द्र का मानना है कि इन सब में मन की निर्मलता प्रमुख है, जो मन के संयम से आती है। मन यदि स्वाधीन है तो विश्व स्वाधीन हो जाता है। मन पर संयम व्रत-नियम आदि के परिपालन और राग-द्वेष पर विजय पाने से हो सकता है। मन की शुद्धि से ही कर्ममल की शुद्धि होती है। मन-शुद्धि के बिना ध्यान सम्भव नहीं है। मन शुद्ध हो तो ध्यान भी शुद्ध होगा एवं कर्म भी नष्ट होंगे। यथा—

ध्यानसिद्धि मनःशुद्धिः करोत्येव न केवलम् ।
विच्छिनत्त्यपि निःशङ्का कर्मजालानि देहिनाम् ।। २०।१४

---

१. ज्ञानार्णव, ३।१४-१७
२. रुद्धे प्राणप्रचारे वपुषि नियमिते संवृत्तेऽक्षप्रपंचे,
नेत्रस्पन्दे निरस्ते प्रलयमुपगतेऽन्तर्विकल्पेन्द्रजाले ।
भिन्ने मोहान्धकारे प्रसरति महसि क्वापि विश्वप्रदीपे,
धन्यो ध्यानावलम्बी कलयति परमानन्दसिन्धुप्रवेशम् ।। ५।२२
३. उत्साहान्निश्चयाद्धैर्यात् संतोषात्तत्त्वनिश्चयात् ।
मुनेर्जनपदत्यागात् षड्भिर्योगः प्रसिध्यति ।। ५।१
४. वही, ५।१,१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन की शुद्धि ध्यान की साधना के लिए अनिवार्य है। शुद्ध मन से ही अन्तःकरण में विवेक जागृत होता है, जो हेय-उपादेय का ज्ञान कराता है। मन का संयम सही ध्यान की कसौटी है। आचार्य कहते हैं कि जो योगी स्वतन्त्र प्रवृत्त होने वाले चित्त को नहीं जीत पाता और यदि वह ध्यानी होने का दावा करता है तो उसे लज्जा आनी चाहिए। क्योंकि मन की एकाग्रता के बिना ध्यान सम्भव नहीं है। मन की स्थिरता ही ध्यान की साधना का प्रमाण है। ज्ञान से संस्कारित स्थिर मन वाले योगी के लिए फिर बाह्य साधनाओं की आवश्यकता नहीं रहती।[1] संक्षेप में ध्यान का लक्षण स्पष्ट करते हुए आचार्य कहते हैं कि जिसके आश्रय से मन अज्ञान को लांघकर आत्मस्वरूप में स्थिर हो जाय वही ध्यान है, वही विज्ञान है, वही ध्येय है और वही तत्त्व (परमार्थ) है—

तद्ध्यानं तद्धि विज्ञानं तद्ध्येयं तत्त्वमेव वा।
येनविद्यामतिक्रम्य मनस्तत्त्वे स्थिरीभवेत्॥ २०।१९

ज्ञानार्णव में ध्यान और साम्यभाव को परस्पर जुड़ा हुआ माना गया है। मन की स्थिरता, साम्यभाव से जैसे ध्यान की साधना सम्भव है, वैसे ही एकाग्र चित्त से किये गये ध्यान से आत्मा में साम्यभाव प्रकट होता है। अतः ध्यान का उद्देश्य भी समता है और साधन भी समता है।[2] समता को छोड़कर अन्य किसी उद्देश्य से किया गया ध्यान आत्म-कल्याणक नहीं हो सकता। वशीकरण, प्रदर्शन, चमत्कार आदि के लिए किया गया ध्यान दुर्गति का कारण बनता है, आत्महित का पोषक नहीं। इसलिए शुभचन्द्र ने ध्यान के प्रमुख चार भेदों का भी विस्तार से वर्णन किया है। मूलतः ध्यान दो प्रकार का है—प्रशस्त ध्यान एवं अप्रशस्त ध्यान। जो ध्यान वस्तुस्वभाव के यथार्थ ज्ञान से रहित है तथा जिसमें मन की स्थिरता, संयम नहीं है, वह अप्रशस्त ध्यान है तथा जहाँ राग-द्वेष से रहित समताभाव है एवं यथार्थज्ञान है, वहाँ प्रशस्त ध्यान है।[3]

ध्यान के प्रमुख चार भेद जैनपरम्परा में स्वीकृत हैं—आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान, धर्मध्यान एवं शुक्लध्यान। इनमें से प्रथम दो ध्यान दुर्ध्यान कहे गये हैं, जो जीवों को अत्यन्त दुःख देने वाले हैं, जबकि अंतिम दो ध्यान कर्मों की निर्जरा करने में समर्थ हैं।

आर्त्तध्यान में व्यक्ति अनिष्ट वस्तुओं के संयोग से दुःख पाता है। विष, कण्टक आदि पदार्थों के संयोग के ध्यान से व्यक्ति आतंकित बना रहता है। कभी वह स्त्री, पुत्र, धन-सम्पत्ति आदि इष्ट वस्तुओं एवं स्वजनों के वियोग की कल्पना करके दुःखी होता रहता है, कभी व्यक्ति को नाना प्रकार के रोग वेदना पहुँचाते रहते हैं। इस वेदना से बचने के लिए व्यक्ति का मन विकल्पों से भरा रहता है। ऐसा आर्तध्यानी व्यक्ति कभी भविष्य में होने वाले भोगों से सुख-प्राप्ति का निदान करता रहता है।[4] ये सभी प्रकार के विचार आर्त्तध्यान के द्योतक

---

१. यस्य चित्तं स्थिरीभूतं प्रसन्नं ज्ञानवासितम्।
सिद्धमेव मुनेस्तस्य साध्यं किं कायदण्डनैः॥ —२०।२६
२. साम्यमेव परं ध्यानं प्रणीतं विश्वदर्शिभि। —२२।१३
३. ज्ञानार्णव, २३।१६-१७
४. अनिष्टयोगजन्माद्यं तथेष्टार्थात्ययात्परम्।
रुक्प्रकोपात्तृतीयं स्यान्निदानात्तुर्यमङ्गिनाम्॥ २३।२२

आसमस्थ तम
आत्मस्थ मन
तब हो सके
आश्वस्त जन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हैं। इनसे दुःख ही मिलता है। आर्त्तध्यान का फल तिर्यंचगति की प्राप्ति कहा गया है।

दुष्ट अभिप्राय वाला प्राणी जब हिंसा, असत्य, चोरी, विषय-सेवन आदि में आनन्द मानने लगता है और इन्हीं कार्यों का चिंतन करता रहता है तो उसको रौद्रध्यान होता है। दूसरे के अपयश की अभिलाषा करना एवं दूसरों के गुणों व उपलब्धियों से ईर्ष्या करना रौद्रध्यान वाले व्यक्ति की पहिचान है। ऐसा व्यक्ति ज्ञान और विचारों से रहित होकर दूसरों को ठगने में लगा रहता है। ये आर्त्त एवं रौद्र ध्यान पापरूपी वृक्षों की जड़ हैं, जिनके फलस्वरूप नरकादि के दुःख भोगने पड़ते हैं।[1]

ज्ञानार्णव में तीसरे धर्मध्यान को सवीर्यध्यान भी कहा गया है। मोह के अन्धकार से निकलकर संसारस्वरूप एवं आत्मस्वरूप का चिंतन करना धर्मध्यान है।[2] आत्मस्वरूप का चिंतन कर योगी जब अपना ध्यान सिद्धात्मा में लगाता है और स्वयं अपने को भी परमात्मा बना लेता है तो वह शुक्लध्यानी कहलाता है। यही परम ध्यान है। भेद-विज्ञान से इस ध्यान की सिद्धि होती है।

आचार्य शुभचन्द्र ने अपने इस ग्रन्थ में अपने पूर्ववर्ती एवं समकालीन प्रमुख आचार्यों के ग्रन्थों से ध्यान विषयक सामग्री को प्रकारान्तर से ग्रहण किया है। ग्रन्थ के सम्पादक पं. बालचन्दजी शास्त्री ने अपनी भूमिका में इस पर विस्तार से प्रकाश डाला है। उससे ज्ञात होता है कि शुभचन्द्र बहुश्रुत विद्वान एवं योगी आचार्य थे। आचार्य रामसेन के तत्त्वानुशासन और ज्ञानार्णव के विषय में पर्याप्त समानता है। ध्यान के भेद-प्रभेदों के विवेचन में शुभचन्द्र ने अधिक विस्तार किया है। मारुति, तैजसि, आप्या (वारुणि) जैसी धारणाओं का यहाँ उल्लेख है तथा महामुद्रा, महामन्त्र, महामण्डल जैसे पारिभाषिक शब्दों का भी प्रयोग है। पद्मसिंहमुनि द्वारा विरचित ज्ञानसार प्राकृत ग्रन्थ का विषय भी ज्ञानार्णव में समाया हुआ है। ज्ञानसार में अतीन्द्रिय, मन्त्र-तन्त्र से रहित, ध्येय-धारणा से विमुक्त ध्यान को 'शून्यध्यान' कहा गया है। ज्ञानार्णव में इसी शून्यध्यान को 'रूपातीत' ध्यान नाम दिया गया है। यथा—

चिदानन्दमयं शुद्धममूर्तं ज्ञानविग्रहम्।
स्मरेद्यत्रात्मनात्मानं तद्रूपातीतमिष्यते॥ ३७।१६

ज्ञानार्णव और आचार्य हेमचन्द्र के योगशास्त्र के विषय में ही नहीं, उसके प्रस्तुतीकरण में भी अपूर्व समानता है। ज्ञानार्णव में ध्यान विषयक सामग्री कुछ बिखरी हुई एवं विस्तृत है, जबकि योगशास्त्र में सरल ढंग से सुबोध शैली में ध्यान का निरूपण किया गया है। विद्वानों का मत है कि योगशास्त्र परवर्ती ग्रन्थ है। ध्यान को मोक्ष का आधारभूत कारण मानने में दोनों आचार्यों का मत एक है। वे मानते हैं कि मोक्ष कर्मों के क्षय से होता है। वह कर्मों का क्षय आत्मज्ञान से सम्भव है और वह आत्मज्ञान ध्यान के माध्यम से प्राप्त होता है। यथा—

---

१. ज्ञानार्णव २४।४१-४२
२. अमी जीवादयो भावाश्चिदचिल्लक्ष्मलांछिताः।
तत्स्वरूपाविरोधेन ध्येया धर्मे मनीषिभिः॥ २८।१८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मोक्षः कर्मक्षयादेव स सम्यग्ज्ञानजः स्मृतः ।
ध्यानबीजं मतं तद्धि तस्मात्तद्धितमात्मनः ।।

—ज्ञाना. २५९ एवं योगशास्त्र ४।११३

इसी प्रकार महर्षि पतञ्जलि के योगसूत्र का भी ज्ञानार्णव से घनिष्ठ सम्बन्ध है। शुभचन्द्र ने योगसूत्र के यम आदि आठ अंगों का उल्लेख करके उनके स्थान पर जैनधर्म के अनुसार अन्य पारिभाषिक शब्द देने का प्रयत्न किया है। यम के समकक्ष बारह भावनाओं एवं अहिंसा आदि पांच महाव्रतों का निरूपण किया गया है। आजीवन व्रतों के पालन को यम एवं सीमित काल तक व्रतों के पालन को नियम कहा गया है। आसन का ध्यान के लिए दोनों परम्पराओं में प्रमुख स्थान है। ज्ञानार्णव में कहा गया है कि जिस आसन से मन में स्थिरता आये वही आसन योग्य है। प्राणायाम एवं प्रत्याहार को समान रूप में दोनों ग्रन्थों ने ध्यान की पुष्टता के लिए स्वीकारा है। धारणा के कार्य में दोनों में समानता है। योगसूत्र में चित्त की एकाग्रता को धारण करने को ध्यान कहा गया है। ज्ञानार्णव में इसी बात को प्रकारान्तर से निरूपित किया गया है कि संसर्ग से रहित होकर एक ही वस्तु का जो स्थिरतापूर्वक चिन्तन किया जाता है, उसका नाम ध्यान है—

एकचिन्तानुरोधो यस्तद्ध्यानं भावनाः पराः ।

अथवा

चिन्तन को अन्य विषयों की ओर से हटाकर किसी एक विषय की ओर लगाना ही ध्यान है—

ध्यानमाहुरथैकाग्रचिन्तारोधो बुधोत्तमाः । २३।१४

योगसूत्र में जिसे समाधि कहा गया है, उसे ज्ञानार्णव में शुक्लध्यान कहा है। इस प्रकार यदि सूक्ष्म अध्ययन किया जाय तो भारतीय योग-साधना के परिज्ञान के लिए ज्ञानार्णव का विषय विशेष महत्त्व का है। क्योंकि इसमें योग की कई परम्पराओं एवं विधियों को सुरक्षित रखा गया है। ज्ञानार्णव में ध्यान के वर्णन के साथ-साथ प्रकारान्तर से जैन-साधना के कई अंगों का भी वर्णन हो गया है। ग्रन्थकार का यहाँ यह लक्ष्य प्रतीत होता है कि ध्यान का उपयोग सांसारिक सुखों की प्राप्ति के लिए नहीं, अपितु आत्मा के वास्तविक स्वरूप को जानने के लिए किया जाना चाहिए। वही आध्यात्मिक ध्यान परम आनन्द का स्रोत हो सकता है।

—अध्यक्ष
जैन विद्या एवं प्राकृत विभाग
सुखाड़िया विश्वविद्यालय
उदयपुर (राज०)

□□

आसमस्थ तम
आत्मस्थ मन
तब हो सके
आश्वस्त जन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org